iJRASET
International Journal For Research in
Applied Science and Engineering Technology

INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH

IN APPLIED SCIENCE & ENGINEERING TECHNOLOGY

Volume: 13 Issue: I Month of publication: January 2025

DOI: https://doi.org/10.22214/ijraset.2025.66569

www.ijraset.com

Call: 08813907089 | E-mail ID: ijraset@gmail.com

International Journal for Research in Applied Science & Engineering Technology (IJRASET)
ISSN: 2321-9653; IC Value: 45.98; SJ Impact Factor: 7.538
Volume 13 Issue I Jan 2025- Available at www.ijraset.com

काव्य प्रयोजन और विभिन्न आचार्यों के मत

डॉ. गजेन्द्र मोहन
सह आचार्य - हिन्दी
राजकीय महाविद्यालय ,नसीराबाद (अजमेर)

' काव्य प्रयोजन ' का अर्थ है - काव्य का उद्देश्य अथवा किसी रचना की आंतरिक प्रेरणा शक्ति। संस्कृत काव्यशास्त्र में विद्वानों ने किसी भी विषय के अध्ययन के हेतु चार क्रमों का निर्धारण किया है - 1.अधिकारी
2.संबंध
3.विषयवस्तु
4.प्रयोजन
इसे 'अनुबंधचतुष्टय' भी कहते हैं। इस 'अनुबंधचतुष्टय' का सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग है - प्रयोजन। काव्य के प्रयोजन का अर्थ है - काव्य रचना से प्राप्त फल। जैसे - धन, यश, आनंद आदि। जब भी काव्य प्रयोजन की चर्चा की जाती है तब काव्य हेतु से इसके अंतर की चर्चा भी की जाती है। भारतीय संस्कृत आचार्यों ने काव्य या साहित्य को उद्देश्य युक्त माना है, अतः आचार्य भरतमुनि से लेकर आचार्य विश्वनाथ तक काव्य के प्रयोजन पर विचार करने की एक लंबी परंपरा रही है। इन मतों का ऐतिहासिक क्रम में विवेचन कर काव्य के प्रयोजन को स्पष्ट किया जा सकता है।
सर्वप्रथम आचार्य भरत ने अपने ग्रंथ ' नाट्यशास्त्र ' में नाट्य के माध्यम से काव्य के प्रयोजन का उल्लेख किया है। इनके अनुसार नाटक धर्म, यश एवं आयु का साधक, कल्याणकारक, बुद्धिवर्द्धक एवं लोकोपदेशक होता है । केवल इतना ही नहीं बल्कि यह लोकमनोरंजक एवं शोकपीड़ितों को शांति प्रदान करने वाला भी है।
"उत्तमाधममध्यानां नराणांकर्मसंश्रयम्।
हितोपदेशजननं धृतिक्रीडा सुखादिकृत्॥
दुःखार्त्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रामजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति॥
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम्।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति॥"1
अर्थात् उत्तम, मध्यम, और अधम मनुष्यों के कर्म को अच्छे ढंग से आश्रय देने (निरूपित करने) के लिए और हितकारी उपदेश देने के लिए, सुख प्रदान करने वाली यह बुद्धि की क्रीड़ा अर्थात् रचना होगी । दुःख, श्रम, शोक से आर्त्त और तपस्वियों को विश्राम (मनोरंजन) देने के लिए यह नाटक (काव्य) होगा। धर्म, यश, आयुष्य और हित व बुद्धि को बढ़ाने वाले तथा लोगों को (उचित) उपदेश देने के लिए यह नाटक होगा अर्थात इसकी रचना होगी। भरत मुनि ने नाटक के आधार पर काव्य के आश्रय को लोगों से जोड़कर रचनाकर्म के उद्देश्य का निरूपण किया है। नाटक की रचना से केवल रचनाकार को ही श्रेय नहीं मिलेगा बल्कि उसके आश्रय सामाजिक लोगों को भी उसका फल मिलेगा। यह नाटक लोगों को धर्म, आयुष्य, हित और बुद्धि को बढ़ाने वाला तो होगा ही, इसके साथ ही लोगों को उत्तम, मध्यम और अधम लोगों की पहचान करने में सहायक तथा हितकारी उपदेश देने वाला भी होगा। यह लोगों की शारीरिक पीड़ा अथवा दुःख को दूर करने वाला होगा, श्रम अथवा कार्य से उत्पन्न थकान को दूर करने वाला होगा, शोक अथवा मानसिक विषाद या क्लेश को दूर करने वाला होगा। इसके अतिरिक्त यह तपस्वियों को विश्राम अथवा मनोरंजन देने के लिए भी होगा। यहाँ रचना अथवा काव्य की उपयोगिता को लोककल्याण से जोड़कर स्पष्ट किया गया है। रचना का उद्देश्य इतनी व्यापकता में और वह भी सामाजिक अर्थात सहृदय लोगों की श्रेणियों को बताते हुए अन्य किसी के द्वारा भरतमुनि के पहले या बाद में निरूपित नहीं किया गया है। कोई भी रचना व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं होती है और रचना का उद्देश्य केवल निजी लाभ नहीं होना चाहिए। इसीलिए यह मौलिक दृष्टिकोण भरतमुनि को कालातीत महत्व प्रदान करता है।
आचार्य भामह के अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तथा कलाओं में विचक्षणता अर्थात अद्भुत नैपुण्य पाने के साथ साथ कीर्ति और लोगों का प्रेम अर्थात लोकप्रियता पाने के लिए साधु अर्थात् श्रेष्ठ काव्य की रचना कवि द्वारा होती है। उनके अनुसार -
"धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।

करोति कीर्त्ति प्रीतिं च साधुकाव्य-निबंधनम्॥" 2

आचार्य भामह द्वारा यहाँ चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति को काव्य रचना का कारण बताकर कवि के लिए अन्य सांसारिक जिम्मेदारियों के निर्वाह को उसी में सम्मिलित कर दिया गया है। कवि जब तक अन्य कर्तव्य और चिन्ताओं में फंसा रहेगा तब तक वह व्यक्तिगत राग द्वेष के अधीन होकर श्रेष्ठ काव्य की रचना नहीं कर सकता क्योंकि रचनाकार को द्रष्टा रूप में ही काव्योचित सत्य की उपलब्धि हो सकती है। ऐसा न रहने पर उसकी रचना में व्यापक लोक सामान्य अनुभव समाहित नहीं हो पाएंगे और वह रचना समाज एवं राष्ट्र में क्लेश व विघटन लाने वाली होकर जीवन के संतुलन को भंग करने वाली हो सकती है। धन प्राप्ति के लिए उसे कोई अन्य कर्तव्य करने की जरूरत नहीं है, क्योंकि कलाओं में निपुणता प्राप्त करने पर वह कहीं पर भी आजीविका प्राप्त कर लेगा। यश और लोकप्रियता हासिल करने पर उसकी भौतिक आवश्यकताएं स्वयं पूरी हो जाएंगी। भामह का मानना है कि श्रेष्ठ काव्य की रचना से सारे अभीष्ट पदार्थों की प्राप्ति हो सकती है ।

आचार्य वामन काव्य के मुख्यतः दो प्रयोजन मानते हैं - दृष्ट एवं अदृष्ट। दृष्ट प्रयोजन का संबंध वे प्रीति से बताते हैं और अदृष्ट प्रयोजन का संबंध कीर्ति से। प्रीति के द्वारा लौकिक फल की तो कीर्ति द्वारा अलौकिक फल की प्राप्ति होती है। उनके कथनानुसार -

"काव्यं सत् दृष्टादृष्टार्थ प्रीतिकीर्त्तिहेतुत्वात्।
काव्यं सत् चारु, दृष्टप्रयोजनं प्रीतिहेतुत्वात्।
अदृष्ट प्रयोजनं कीर्त्तिहेतुत्वात्।" 3

यहाँ पर दृष्ट व अदृष्ट तथा दोनों के साथ चारु का विशेषण रूप में प्रयोग व्याख्या की अपेक्षा रखता है। दृष्ट का अर्थ है, जो दिखाई दे, जिसे वामन ने प्रीति के साथ जोड़ कर रखा है। प्रीति का अर्थ है " सहज प्रेम या स्वाभाविक प्रवृत्ति "। जैसे अर्थ और काम में मनुष्य की स्वाभाविक रुचि और उसे प्राप्त करने की इच्छा होती है, लेकिन इनको प्राप्त करने के लिए अनुचित व अमर्यादित मार्ग का चयन करना अनुपयुक्त होगा। इसलिए चारु विशेषण द्वारा समाज एवं परम्पराओं द्वारा मान्यता प्राप्त मार्ग के रूप में काव्य की रचना का विधान किया गया है। मात्र रचना द्वारा ही नहीं उनके पाठ व गान द्वारा भी प्रीति की प्राप्ति होती है। ठीक उसी तरह जैसे सूत, मागध एवं बन्दी जनों द्वारा श्रेष्ठ काव्य का गायन करने पर अर्थ की उपलब्धि होती है। मनुष्य की मूल प्रवृत्ति के रूप में काम भावना का परिष्कार श्रेष्ठ काव्य के पढ़ने सुनने से होता है। उसके भीतर अवांछनीय भोग लालसा का शमन होता है। ऐसे ही कीर्ति को चारुत्व के साथ जोड़ने का भी विशेष अर्थ है। काव्य रचना की शक्ति की दुर्लभता का विवेचन काव्य हेतु के अन्तर्गत पूर्व आचार्यों ने भी किया था । इस शक्ति के दुरूपयोग के प्रति भी वे सजग भी थे। आचार्य वामन ने यहाँ उसी ओर संकेत किया है। कीर्ति हासिल करने के प्रमुख उपाय के रूप में दो पुरुषार्थ धर्म और मोक्ष का विवेचन संस्कृत साहित्य में मिलता है। धर्म कार्य के सम्पादन से यश मिलता है किंतु केवल यश के लिए किया जाने वाला धर्म का अनुष्ठान दम्भ व पाखण्ड का पोषक माना जाता है। इसी तरह मोक्ष प्राप्त करने का अर्थ है ज्ञान की प्राप्ति। यहीं पर चारुत्व द्वारा कीर्ति पाने के उपाय रूप में काव्य को माध्यम बनाने के लिए सावधानी बरतने की आवश्यकता पर वामन बल देते हैं। अनुपयुक्त तरीके से यश पाने के लिए कवित्व शक्ति का दुरुपयोग कोई न करे जिससे सामाजिक व्यवस्था भंग हो, इसकी चिन्ता वामन करते हैं। पुरुषार्थ सिद्धि का सम्बन्ध एषणात्रय की पूर्ति से जुड़ा हुआ है जिसका संबंध मनुष्य के भीतर की तीन मूल इच्छाओं से है - 1.पुत्रैषणा, 2.वित्तैषणा 3.लोकैषणा। पुत्रैषणा अर्थात पुत्र या संतान प्राप्ति की इच्छा या काम सुख प्राप्ति की इच्छा। वित्तैषणा अर्थात धन प्राप्ति की इच्छा। लोकैषणा अर्थात यश अथवा कीर्ति प्राप्ति की इच्छा। इन्हीं तीन मूल इच्छाओं की उपयुक्त तरीके से पूर्ति के लिए चार पुरुषार्थों की अवधारणा का विकास हुआ है। आचार्य वामन के समय लोकभाषा के कवियों और संस्कृत भाषा के कवियों द्वारा कवित्व शक्ति का दुरुपयोग किया जा रहा था। काव्य दोष की विस्तृत अवधारणा का आधार यही कवित्व शक्ति का गलत तरह से अपने निजी स्वार्थ के लिए प्रयोग करने से उत्पन्न अव्यवस्था थी। आचार्य वामन ने एक आचार संहिता और नैतिकता के निर्माण के प्रयत्न में अपने काव्य प्रयोजन को विकसित किया है।

भामह के काव्य-प्रयोजन का विस्तार करते हुए रुद्रट मानते हैं कि काव्य का प्रयोजन चतुर्वर्ग अर्थात धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की फल-प्राप्ति के अतिरिक्त अनर्थ का शमन, विपत्ति का निवारण, रोगविमुक्ति तथा अभीष्ट वर की प्राप्ति है। उनका कथन है कि:

"ननु काव्येन क्रियते सरसानामवगमश्चतुर्वर्गे।
लघुमृदुनीरसेभ्यस्ते हि त्रयस्संति शास्त्रेभ्यः॥
अर्थमनर्थोपशमं शमसममथवा मतं यदेवास्य।
विरचितरुचिरसुरस्तुतिरखिलं लभते तदेव कविः॥
नृत्वा यथा हि दुर्गा केचित्तीर्णा दुस्तरां विपदम्।
अपरे रोगविमुक्तिं वरमन्ये लेभिरेऽभिमत्म्॥"4

रुद्रट का काव्य प्रयोजन कवि की आवश्यकता से अधिक जुड़ा हुआ है। काव्य द्वारा चतुर्वर्ग अर्थात् चारों पुरुषार्थों में सरस अवगमन या उनकी प्राप्ति होती है। शास्त्र द्वारा निर्मित विधानों को भी सुबोध शैली में कवि अपने काव्य में प्रस्तुत करता है। पाठकों और कवि दोनों के लिए अनर्थ का नाश, शांति की उपलब्धि ,विपत्ति से छुटकारा, रोग का नाश और अभिलषित वर की प्राप्ति या इच्छापूर्ति में सहायक काव्य की रचना कवि की समस्त भौतिक बाधाओं को दूर करने का माध्यम है। लोक और राजसभा, दोनों स्थानों पर कवि के अभीष्ट की सिद्धि में काव्य रचना समर्थ है। रूद्रट का काव्य प्रयोजन इस अर्थ में विशिष्ट है कि वह अनर्थ, विपत्ति के विविध रूपों के निवारण में समर्थ काव्य के अलौकिक महत्व की प्रतिष्ठा करता है। यह तन्त्र और आगम ग्रंथों की रचना का काल भी है। कवित्व शक्ति द्वारा नये नये मंत्र शास्त्रों व संहिताओं का निर्माण उस समय हो रहा था, इस सब की जानकारी यहाँ उपलब्ध होती है।

आचार्य राजानक कुंतक ने काव्य के मुख्यतः तीन प्रयोजनों का उल्लेख किया है -

(1) चतुर्वर्ग की प्राप्ति की शिक्षा

(2) व्यवहार आदि के सुंदर रूप की प्राप्ति

(3) लोकोत्तर आनंद की उपलब्धि।

वक्रोक्ति काव्य जीवितम में उनके अनुसार :

"धर्मादिसाधनोपायः सुकुमारक्रमोदितः।
काव्यबंधोऽभिजातानां हृदयाह्लादकारकः॥
व्यवहार परिस्पंद सौंदर्य व्यवहारिभिः।
सत्कावयाधिगमादेव नूतनौचित्यमाप्यते॥
चतुर्वर्गफलस्वादमप्यतिक्रम्य तद्विदाम्।
कायामृतरसेनांतश्चमत्कारो वितन्यते॥ 5

अर्थात् काव्य धर्मा आदि का साधन और उपाय है। इसमें साधन कवियों के लिए है और उपाय पाठकों के लिए है। काव्य को पढ़ना भी धर्म ही माना जाता है। स्वाध्याय को संस्कृत साहित्य में यज्ञ और तपस्या का स्थान दिया गया है। स्वाध्याय अपनी सुकुमारता अर्थात सरसता से सहृदय को तुरंत यह बोध कराता है कि कैसे धर्म व अन्य पुरुषार्थों का सम्पादन किया जा सकता है। अभिजात अर्थात् सुरुचि सम्पन्न और परिष्कृत विचारों वाले सहृदय को आह्लाद अर्थात प्रेमजनित आनंद प्रदान करता है। यह व्यवहार में सौन्दर्य की वृद्धि करता है। इससे कवित्व शक्ति सम्पन्न लोगों को विशेष सम्मान तो मिलता ही है, जो उनको धारण करते हैं, उनको भी विशेष रूप में व्यवहार करने का ज्ञान मिलता है। चतुर्वर्ग फल द्वारा प्राप्त स्वाद या आनंद का अतिक्रमण करके काव्य रूपी अमृत से विद्वानों के उत्तम आनंद चमत्कार को बढ़ाने वाला यह काव्य होता है। इसका अर्थ यह है कि काव्य का चमत्कार ही यही है कि उसकी रचना के साथ पुरूषार्थों की सिद्धि पृथक से करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। विद्वानों के लिए काव्य रचना ही साध्य व साधन दोनों हैं।

काव्य प्रयोजन के संबंध में अपने पूर्ववर्ती मतों का समाहार करते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं कि -

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परिनिर्वृत्तये कांतसम्मिततयोपदेशयुजे॥" 6

काव्य रचना का कारण व्यावहारिकता के धरातल पर अधिक व्यापक रूप में उपयोगिता की दृष्टि से प्रस्तुत करते हुए मम्मट मानते हैं कि काव्य से यश, धन, व्यवहार- ज्ञान, अमंगल का नाश, आनंद की प्राप्ति और कांता अर्थात प्रेमी, प्रेमिका की भांति उपदेश मिलता है। काव्यरचना पर कवि कालिदास, भारवि, माघ की भांति उत्तम यश प्राप्त होता है। धावक कवि की भांति या कवि बिहारी की भांति धन की प्राप्ति होती है। महाभारत, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि काव्यों से लोकव्यवहार का ज्ञान होता है। उत्तम काव्य से अमंगल का नाश अर्थात रोग, व्याधि या शाप आदि का नाश होता है। जिस तरह से मयूरभट्ट ने सूर्यशतक द्वारा और महाकवि कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य की रचना द्वारा कुष्ठ रोग से मुक्ति पायी थी। यह भी कहा जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास ने हनुमान बाहुक की रचना द्वारा शारीरिक पीड़ा से मुक्ति प्राप्त की थी। पुष्पदंत ने शिवमहिम्न स्तोत्र द्वारा शाप से मुक्ति प्राप्त की थी। स्तोत्र साहित्य अथवा भक्ति साहित्य, रामायण या रामचरितमानस की तरह रचना करने अथवा पाठ करने से आनंद या मुक्ति मिलती है। कांता अर्थात प्रेयसी की तरह उपदेश द्वारा जीवन के कष्टमय समय में उचित परामर्श अथवा मार्गदर्शन भी काव्य से ही प्राप्त होता है। उदाहरण स्वरूप रामायण, महाभारत आदि आर्ष काव्यों द्वारा। तीन प्रकार के उपदेश बताए जाते हैं - (1) प्रभु सम्मित

(2) सुहृद सम्मित

(3) कांता सम्मित

प्रभु सम्मित उपदेश का अर्थ है जो आदेशात्मक रूप में होते हैं अर्थात् जिनको करना या नहीं करना निश्चित होता है। वेदों, स्मृतियों के वचन प्रभु सम्मित वाक्य के अन्तर्गत आते हैं। सुहृद सम्मित उपदेश में मित्र की तरह कल्याणकारी उपदेश और जीवनोपयोगी चर्चा आती है। जैसे पुराण इतिहास आदि के सन्दर्भ। कांता सम्मित उपदेश वहाँ होते हैं जहाँ प्रेयसी की तरह कल्याणकारी मधुर वचन द्वारा किसी को वास्तविक कर्तव्य या कल्याण का बोध करवाया जाता है। सुहृद सम्मित उपदेश में उदाहरण द्वारा यह बताया जाता है कि उसके द्वारा ऐसा किया गया और उसे ऐसी गति प्राप्त हुई, इसलिए जो भी करना हो करो। यहाँ थोड़ी उपेक्षा का भाव भी रहता है, लेकिन कांतासम्मित उपदेश में प्रेयसी की भांति मान-मनुहार और हर तरह से आत्मीयता द्वारा मधुर वचनों में उपदेश दिया जाता है। काव्य इसीलिए वेदों, पुराणों या इतिहास से पृथक होता है क्योंकि उसमें चारुत्व अर्थात सौन्दर्य पर आधारित शब्दार्थ प्रधान होता है। मम्मट की यह परिभाषा कवि और पाठक दोनों की आवश्यकता में आवश्यक तालमेल बैठाने तथा कविता द्वारा दोनों की आवश्यकता पूरी होने के सामंजस्यवादी दृष्टिकोण का परिणाम है। भरत मुनि में सामाजिक का महत्व अधिक और कवि की जरूरतों की उपेक्षा दिखाई देती है तो भामह आदि आचार्य कवि की आवश्यकता को मुख्यतः ध्यान में रखते हैं। मम्मट में कवि और सामाजिक अर्थात पाठक दोनों के हितों व जरूरतों के उचित अनुपात में ध्यान रखा गया है।

मम्मट के पश्चात काव्य के प्रयोजन पर विचार में मौलिकता का अभाव दिखाई पड़ता है। परवर्ती आचार्यों ने मात्र मम्मट के ही विचारों को व्याख्यायित किया है। आचार्य विश्वनाथ ने काव्य प्रयोजन के अंतर्गत चतुर्वर्ग की प्राप्ति को महत्व दिया है। उनके अनुसार शास्त्र का भी यही प्रयोजन है किन्तु शास्त्र का अनुशीलन कष्टसाध्य है और सबको सुलभ नहीं होता है। काव्य के अध्ययन से जनसामान्य को भी चतुर्वर्ग की प्राप्ति संभव है।

"चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।"7

इसमें यह कहना तनिक भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि विश्वनाथ की चतुर्वर्ग की प्राप्ति के उद्देश्य से काव्य सृजन की बात मम्मट के कांता सम्मत उपदेश का ही विस्तार मात्र है।

उपर्युक्त वर्णित आचार्यों के मत का अध्ययन कर हम कहा जा सकता है कि काव्य की रचना किंचित उद्देश्य को ध्यान में रखकर की जाती है। काव्य के द्वारा कवि जीवन का परिष्कार करता है। भारतीय साहित्य का प्रधान लक्ष्य रस का उद्रेक होते हुए भी प्रकारांतर से जीवनमूल्यों का उत्थान एवं सामाजिक कल्याण है। भारतीय परंपरा में काव्य या साहित्य 'सत्यं शिवं सुंदरं' का सच्चा वाहक है। सत्य अर्थात यथार्थ और शिव अर्थात कल्याणकारी हुए बिना किसी भी कृति का सुंदर होना असंभव है। इसीलिए हिंदी आलोचना ने भी लोकमंगल एवं जनपक्षधरता को साहित्य का वांछित प्रयोजन स्वीकार किया है। भारतीय संस्कृत आचार्यों की दृष्टि सदैव इस बात पर रही कि कवित्व शक्ति एक दुर्लभ व श्रेष्ठ प्रतिभा है। इसका दुरुपयोग करने के लिए न तो कोई मजबूर हो और न स्वयं से करना चाहे। जैसे कालिदास द्वारा रचित कुमारसम्भवम् से उनको कुष्ठ रोग होना बताया जाता है तो इसका यही कारण है कि वे अपनी प्रतिभा को गलत तरीके से काव्य में नियोजित करते हैं। फिर वे " रघुवंशम " महाकाव्य द्वारा उस रोग से मुक्ति हासिल करते हैं। काव्यरचना स्वयमेव एक उत्तम पुरुषार्थ है। लोकहित और लोकरंजन के लिए अपने को समर्पित करने वाले सहृदय को न तो पृथक से किसी पुरुषार्थ सिद्धउपाय करने की जरूरत है और न ही उसे स्वयं चिन्तित होना चाहिए। काव्य रचना को हमारे यहाँ साधना या तपस्या का स्थान दिया गया है, इसलिए इसकी रचना से निर्माता और पाठक दोनों हित एवं पोषण प्राप्त करते हैं । अवांछनीय रूप से इसका दुरुपयोग करने से उत्पन्न अव्यवस्था के प्रति सजग रहते हुए आचार्यों द्वारा मूलतः यह स्थापित किया गया है कि काव्य रचना का प्रयोजन उदात्त होना चाहिए क्योंकि यह अपने प्रभाव में लोक को व्याप्त करके उसे सुव्यवस्थित या पथभ्रष्ट करने की संभावनाओं से युक्त है। काव्य लोक का पथप्रदर्शक बने और शांति व सुव्यवस्था लाने का माध्यम बने, कवि की दुर्लभ प्रतिभा समाज के लिए उपयोगी हो, इसकी चिन्ता व निर्देश के रूप में काव्य प्रयोजन की अवधारणाओं का विकास हुआ है।

सन्दर्भ

[1] नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, 1/113- 15
[2] काव्यालंकार, आचार्य भामह, ½
[3] काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, आचार्य वामन, 1/1/5
[4] काव्यालंकार, रुद्रट, 12/1,1/8,9
[5] वक्रोक्तिजीवितम्, राजानक कुंतक, 1/3,4,5
[6] काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट ,1/2
[7] साहित्यदर्पण, आचार्य विश्वनाथ, 1/2

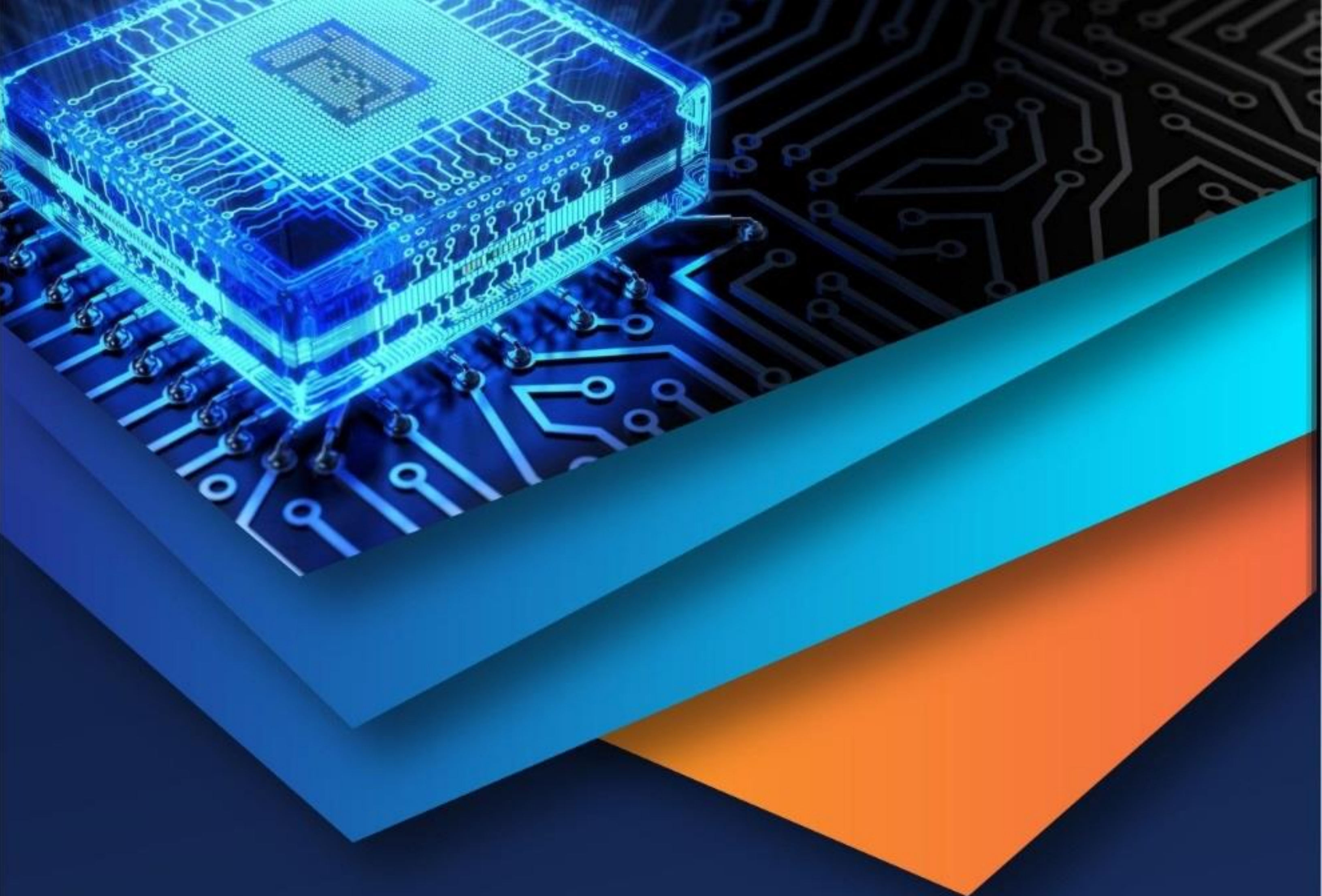

10.22214/IJRASET

45.98

IMPACT FACTOR: 7.129

IMPACT FACTOR: 7.429

INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH

IN APPLIED SCIENCE & ENGINEERING TECHNOLOGY

Call : 08813907089 (24*7 Support on Whatsapp)